लोक प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण

प्रशासन पर जितना आवश्यक कार्यपालिका व विधायिका का नियन्त्रण है उतना ही आवश्यक न्यायपालिका का भी नियंत्रण है। प्रशासनिक अधिकारियों के द्वारा अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने पर नागरिक उनके विरुद्ध न्यायालयों की शरण ले सकते हैं। इस सम्बन्ध में प्रमुख सीमा यह है कि नागरिकों द्वारा अधिकार हनन की शिकायत का आवेदन-पत्र देने पर ही न्यायपालिका हस्तक्षेप कर सकती है अन्यथा नहीं। न्यायपालिका का नियंत्रण प्रशासकीय कार्यों की वैधानिकता निश्चित करता है। अतः जब कोई सरकारी अधिकारी नागरिकों के संवैधानिक अधिकारों का अतिक्रमण करता है तो न्यायपालिका उनकी रक्षा करती है। प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण 'कानून का शासन' की अवधारणा से निकलता है जो ब्रिटिश और भारतीय, दोनों संविधानों की आधारभूत विशेषता है। ब्रिटिश संवैधानिक वकील A.V. Dicey अपनी विख्यात पुस्तक Introduction to the Study of the Law of the Constitution में इस अवधारणा की शास्त्रीय व्याख्या प्रस्तुत किया है। "कोई भी व्यक्ति दंडनीय नहीं है या किसी से भी कानूनी तौर पर जान या माल का नुकसान उठवाया नहीं जा सकता है, सिवा इसके कि उसने देश के आम न्यायालय के सम्मुख आम कानूनी ढंग से स्थापित कानून को साफ-साफ तोड़ा हो..... कोई व्यक्ति कानून से ऊपर नहीं लेकिन.... प्रत्येक व्यक्ति चाहे उसका पद या स्थिति कुछ भी हो, सामान्य कानून के क्षेत्र के अधीन है और सामान्य न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र के प्रति उत्तरदायी है.... कानूनी औचित्य के बिना किए गए प्रत्येक कार्य के लिए प्रधानमंत्री से लेकर एक सिपाही या कर संग्राहक उसी उत्तरदायित्व के अंतर्गत हैं जिसके कोई अन्य नागरिक.... हमारे संविधान के सामान्य सिद्धांत..... उन न्यायिक निर्णयों की देन है जो न्यायालयों के सामने लाए गए किन्हीं वादों में गैर-सरकारी लोगों के अधिकारों का निर्धारण करते हैं।"भारत में लोक प्रशासन के प्रथम अध्यापक एम.पी. शर्मा ने सही ही कहा था- न्यायालयों का काम नागरिकों की स्वतंत्रताओं और उनके अधिकारों की रक्षा करना है; अत: उनके दृष्टिकोण से न्यायालयों द्वारा लागू नियंत्रण 'न्यायिक उपचार' कहलाते हैं। वास्तविकता यह है कि न्यायालयों के समक्ष सरकारी जवाबदेही और सरकारी ज्यादतियों या सत्ता के दुरुपयोग के विरुद्ध नागरिकों के लिए 'न्यायिक उपचार' ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

● **क्षेत्र विस्तार:-** प्रशासनिक कार्यों में न्यायपालिका निम्नलिखित परिस्थितियों में हस्तक्षेप कर सकती है:

(i) अधिकार क्षेत्र का अभाव - जब प्रशासक अधिकार के बिना या उसके अपने अधिकार क्षेत्र से परे या अपने अधिकार क्षेत्र की भौगोलिक सीमाओं के बाहर काम करता है। तकनीकी तौर पर इसे 'प्राधिकार की अति' (Overfeasance) कहते हैं ।
(ii) कानून की त्रुटियां - जब प्रशासक कानून की गलत व्याख्या करता और इस प्रकार नागरिक पर वे बाध्यताएं थोपता है जो कानून की विषयवस्तु द्वारा अपेक्षित नहीं है, तो तकनीकी तौर पर इसे 'प्राधिकार की भ्रांति' (Misfeasance) कहते हैं।
(iii) तथ्यों का पता लगाने में त्रुटियां- प्रशासक जब तथ्यों की खोज करने में भूल करता है और गलत पूर्व धारणाओं के आधार पर काम करता है ।
(iv) प्राधिकार का दुरुपयोग- जब प्रशासक बदले की भावना से किसी व्यक्ति को नुकसान पहुंचाने के लिए जब अपने प्राधिकार (शक्ति या विवेक) का दुरुपयोग करता है। तकनीकी तौर पर इसे कुप्राधिकार (Malfeasance) कहा जाता है।
(v) प्रक्रिया की त्रुटियां-जब प्रशासक निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं करता है।

उपरोक्त प्रकार के मामलों से प्रभावित नागरिक प्रशासनिक कार्यों में न्यायपालिका के हस्तक्षेप की माँग कर सकते हैं।

I. सरकार के विरुद्ध अभियोग:- भारतीय संविधान के अनु. 300 में किसी राज्य के विरुद्ध अभियोग की स्थिति का वर्णन इस प्रकार है:
"भारत सरकार के विरुद्ध या उसके द्वारा भारतीय संघ के नाम से अभियोग उपस्थित किये जा सकते हैं। किसी राज्य की सरकार के विरुद्ध या उसके द्वारा उस राज्य के नाम से भी अभियोग प्रस्तुत किये जा सकते हैं।" अतः भारतीय संघ या उसके किसी राज्य के विरुद्ध या उसके विरुद्ध उसी प्रकार का मुकद्दमा किया जा सकता है जिस प्रकार संविधान निर्माण के पूर्व औपनिवेशिक सरकार एवं तत्कालीन प्रांतीय सरकारों या भारतीय राज्यों द्वारा या उन पर मुकद्दमे दायर किए जा सकते थे बशर्ते संसद या किसी राज्य के विधान मंडल ने संविधान में प्रदत्त शक्ति को अधीन विधि द्वारा कोई विपरीत व्यवस्था न दी हो।
भारत में संविदा (समझौते) संबंधी विवादों में राज्य के विरुद्ध अभियोग प्रस्तुत किया जा सकता है। उसके विरुद्ध असंप्रभु कार्यों के लिए ही अभियोग प्रस्तुत किया जा सकता है, संप्रभु कार्यों के लिए नहीं। संप्रभु कार्यों के अंतर्गत युद्ध काल में सैनिक प्रयोग के लिए सामग्री ले जाना, किसी सैनिक मार्ग का निर्माण या सुधार करना, अनुचित ढंग से बंदी बनाना, विधिक कर्तव्यों के पालन में राज्य के कर्मचारियों द्वारा की गयी गलतियाँ, सरकारी संरक्षण में संपत्ति की हानि आदि बातें आती है।

II. सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध अभियोग:-
भारतीय संविधान द्वारा राष्ट्रपति तथा राज्यपालों को अपने पद संबंधी कर्त्तव्यों व शक्तियों के अनुपालनार्थ किए गए हर कार्य के लिए उन्मुक्ति प्राप्त है। केवल संसद ही राष्ट्रपति पर महाभियोग लगा सकती है उसके विरुद्ध कोई फौजदारी कार्यवाही नहीं की जा सकती है। भारत में मंत्रियों को ऐसी कोई उन्मुक्ति प्राप्त नहीं है। उनके विरुद्ध साधारण नागरिकों की भांति न्यायालयों में अभियोग प्रस्तुत किये जा सकते हैं

III. न्यायिक पदाधिकारी रक्षा अधिनियम, 1850:
इसके अंतर्गत यह व्यवस्था की गई थी कि – "न्यायिक कार्य करने वाले किसी भी न्यायाधीश, दंडाधिकारी, शांति न्यायालय, कलेक्टर या अन्य कर्मचारी के विरुद्ध किसी भी असैनिक (Civil) न्यायालय में अपने पद संबंधी कर्तव्यों को पूरा करने के लिए किए गए कार्य या कार्य को करने का आदेश देने के लिए अभियोग नहीं चलाया जा सकता, भले ही वह कार्य उसने अपनी अधिकारिता के अंदर या बाहर किया हो; यदि कार्य करते या आदेश देते समय उसे पूर्ण सच्चाई के साथ यह विश्वास था कि उसने जो कार्य किया है तथा जो आदेश दिया है वह उसके अधिकारिता में है..... ।"
वे व्यक्तिगत रूप से किसी भी ऐसे अनुबंध या आश्वासन के लिए उत्तरदायी नहीं होते हैं "जो इस संविधान या भारत सरकार के किसी अधिनियम के लिए संपादित या संपन्न किया गया हो।" यदि सरकारी कर्मचारी पूर्ण निष्ठा से संविधिक सत्ता उपयोग नहीं करता है, और दुष्कृत्य तथा अविधिक कार्य के लिए उत्तरदायी होता है तो उसके विरुद्ध दीवानी कार्यवाही दो माह की पूर्वलिखित सूचना देकर आरंभ की जा सकती है।
● **असाधारण उपचार:-** सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों को न्यायिक समीक्षा की अधिकारिता के अंतर्गत कुछ विशेष अधिकार दिए गये हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है:

A. बंदी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus) :- लैटिन शब्द 'हेबियस कॉर्पस' का शाब्दिक अर्थ 'शरीर को प्राप्त करना' है। किसी भी व्यक्ति को न्यायालय में प्रस्तुत न करके उसे अवैध बंदी रखने पर यह लेख जारी किया जा सकता है। किसी भी व्यक्ति को अकारण बंदी नहीं बनाया जा सकता है। बंदी प्रत्यक्षीकरण द्वारा न्यायालय उस व्यक्ति को, जिसने किसी अन्य व्यक्ति को बंदी बना रखा है, आदेश देता है कि वह बंदी बनाए गए व्यक्ति को, सशरीर न्यायालय में उपस्थित करे ताकि उसे बंदी बनाए जाने के औचित्य पर विचार किया जा सके। बंदी बनाने के पर्याप्त कारणों के अभाव में न्यायालय बंदी को मुक्त करने का आदेश दे सकता है। इस लेख का उद्देश्य बंदी की वैधता का परीक्षण करना है। यह लेख वैयक्तिक स्वतंत्रता की रक्षा करता है और मनमाने ढंग से बंदी बनाने पर प्रतिबंध

लगाता है किंतु निवारक निरोध अधिनियम (Preventive Detention Act) तथा भारत सुरक्षा नियम (Defence of India Rules – D.I.R.) इसकी सामान्य उपयोगिता को सीमित कर देती है।

B. परमादेश (Mandamus):-लैटिन शब्द मैनडेमस का अर्थ है- समादेश या अधिदेश। इस लेख के द्वारा न्यायालय किसी भी सार्वजनिक निकाय या सार्वजनिक अधिकारी को कानून के अनुसार अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिए कह सकता है। यह "एक ऐसा समादेश है जिसे राज्य या सार्वभौम सत्ता के नाम से समुचित अधिकार-क्षेत्र वाला कोई भी सामान्य न्यायालय किसी निगम, अधिकारी, अधीन या निम्न न्यायालय के नाम किसी विशेष कर्तव्यपालन के लिए जो उस लेख में उल्लिखित हो, जारी कर सकता है। स्मरणीय है कि लेख में उल्लिखित कर्तव्य या तो विधि के क्रियान्वयन या पक्ष-विशेष की सरकारी स्थिति से उत्पन्न होता है जिनके नाम से लेख निर्देशित होता है।"
यह लेख किसी सार्वजनिक या शासकीय अधिकारी को ऐसे कार्य को करने का आदेश देता है जो उस अधिकारी के सरकारी दायित्व का ही एक भाग होता है, किंतु जिसे पूरा करने में वह असफल रहा हो। यह लेख न्यायालय द्वारा अपनी इच्छा से जारी किया जा सकता है। इस लेख की मांग अधिकार के रूप में नहीं की जा सकती है। जब तक कोई अन्य उपचार उपलब्ध होता है सामान्यतः न्यायालय इस लेख को जारी नहीं करते हैं।

C. निषेधाज्ञा (Prohibition):- निषेधाज्ञा का लेख किसी उच्च श्रेणी के न्यायालय द्वारा किसी निम्न श्रेणी के न्यायालय के नाम इसलिए जारी किया जाता है कि निम्न न्यायालय ऐसे किसी अधिकार-क्षेत्र का अपहरण न करे जो विधि द्वारा उसे प्रदान नहीं किया गया है।
अतः यह एक निषेधात्मक व्यवस्था है जिसके द्वारा किसी निम्न न्यायालय को "किसी अधिकार-क्षेत्र पर अनाधिकृत रूप से अधिकार से रोकना होता है, जो उसे विधिक रूप में प्राप्त नहीं है।" इसे केवल न्यायिक या अर्धन्यायिक न्यायाधिकरणों के विरुद्ध ही जारी किया जा सकता है।

D. उत्प्रेषण (Certiorari):- लैटिन शब्द 'सरटीओरेरी' का अर्थ 'प्रमाणित होना' है। इस लेख के द्वारा बड़े न्यायालय को यह अधिकार प्राप्त होता है कि वह अधीनस्थ न्यायालयों के रिकॉर्ड जाँच-पड़ताल के लिए मँगा सकता है। उत्प्रेषण "एक ऐसा लेख है जो किसी उच्च न्यायालय द्वारा अधीनस्थ अभिलेख न्यायालय या न्यायिक अधिकार से युक्त किसी

अन्य अधिकरण या अधिकारी के नाम जारी किया जाता है। इस लेख द्वारा विचाराधीन किसी विवाद या ऐसे विवाद के संबंध में अभिलेख तथा कार्रवाई के प्रमाण और वापसी की मांग की जाती है जिसका निर्णय पहले हुआ हो। स्मरणीय है कि इस लेख की माँग उन विवादों के संबंध में की जाती है जिनकी प्रक्रिया सामान्य विधि के अनुरूप नहीं होती है।" यह लेख केवल किसी न्यायिक कार्य के विरुद्ध ही जारी किया जाता है। इसका कार्य छोटे न्यायालयों के अविधिक या क्षेत्राधिकारहीन कार्यों को रोकना या उनको समाप्त करना है।

निषेधाज्ञा (Prohibition) तथा उत्प्रेषण लेख (Certiorari) में मुख्य अंतर यह है कि उत्प्रेषण लेख निषेधात्मक तथा सकारात्मक दोनों ही है, जबकि निषेधाज्ञा केवल रक्षात्मक होती है।

E. अधिकार पृच्छा (Quo Warranto) :- लैटिन शब्द 'क्वो वारंटो' का शाब्दिक अर्थ है 'किस अधिपत्र या प्राधिकार द्वारा।' "अधिकार पृच्छा वह उपचार या कार्रवाई है जिसके द्वारा राज्य ऐसे दावे की वैधता संबंधी जांच करता है जिसके कारण किसी पक्ष द्वारा किसी पद पर या विशेषाधिकार का दावा किया जाता है। यदि ऐसे दावे का सुदृढ़ आधार नहीं है तो राज्य दावेदार को उस पद के लाभ से वंचित कर सकता है। यही नहीं, किसी पद या दावे को उचित तरीकों से प्राप्त करने एवं उपयोग करने पर भी यदि उसका दुरुपयोग किया जाता है या प्रयोग नहीं किया जाता, तो राज्य उसे निरंतर या पुन: प्राप्त कर सकता है।" इस लेख का उद्देश्य सरकारी पद संबंधी किसी दावे की जांच करना है।

अत: ये उपरोक्त लेख न्यायिक कार्यों के साथ कुछ प्रशासन पर भी नियंत्रण रखते हैं।

● **भारत में समादेश (Writs in India):-**इस संदर्भ में निम्नलिखित बिंदुओं को उल्लिखित किया जा सकता है:

A. न्यायालय उपरोक्त सभी समादेश जारी कर सकते हैं परंतु संविधान में केवल पहले पाँच का उल्लेख है।

B. संविधान के अनु. 32 ने सर्वोच्च न्यायालय को नागरिकों के मूलभूत अधिकारों को लागू करने के लिए समादेश जारी करने का अधिकार दिया है। ये मूलभूत अधिकार संविधान द्वारा स्वीकृत हैं।

C. संविधान की अनु 226 उच्च न्यायालयों को यह अधिकार देती है कि वे समादेशों को न केवल संविधान द्वारा आश्वासित नागरिकों के मूल अधिकारों को लागू करने बल्कि अन्य उद्देश्यों के लिए भी जारी कर सकते हैं। इस प्रकार समादेश जारी करने के संबंध में उच्च न्यायालयों का अधिकार क्षेत्र सर्वोच्च न्यायालय की तुलना में अधिक व्यापक है।

D. न्यायालय समादेशों को न केवल व्यक्तियों के बल्कि भारत सरकार के विरुद्ध भी जारी कर सकते हैं। दूसरी ओर ब्रिटेन में न्यायालय समादेश केवल व्यक्तियों के विरुद्ध जारी कर सकते हैं सरकार के विरुद्ध नहीं। भारत में समादेश विधायिका के विरुद्ध जारी नहीं किया जा सकता है।
E. अनु. 32 के अधीन संसद किसी अन्य न्यायालय को भी समादेश जारी करने की शक्ति प्रदान कर सकती है किंतु अभी तक उस प्रकार कोई भी प्रावधान संसद द्वारा निर्मित नहीं किया गया है।

● **न्यायिक नियंत्रण की सीमाएं:-** निम्नलिखित तथ्य प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण की प्रभावशीलता को सीमित करते हैं:
(i) न्यायपालिका प्रशासनिक कार्यों में स्वयं हस्तक्षेप नहीं कर सकती। न्यायालय तभी हस्तक्षेप करती है जब कोई पीड़ित नागरिक मामले को उनके सामने लाता है; अत: न्यायपालिका के पास अपनी ओर से कार्यवाही (Suo Moto) करने का अधिकार नहीं होता।
(ii) न्यायालयों द्वारा लागू किया गया नियंत्रण अपनी प्रकृति में शवपरीक्षण नियंत्रण होता है अर्थात यह तभी हस्तक्षेप करते हैं जब प्रशासनिक कार्यों से नागरिक को नुकसान हो चुका होता है।
(iii) प्रशासन के सारे कार्य न्यायिक नियंत्रण के अधीन नहीं है क्योंकि संसद कुछ मामलों को न्यायालयों के अधिकारिता से बाहर कर सकती है।
(iv) स्व-व्यक्त अध्यादेश अर्थात कुछ मामलों को न्यायपालिका अपनी अधिकारिता से खुद बाहर कर देती है। कुछ विशुद्ध प्रशासनिक मामलों में न्यायालय अपनी ओर से हस्तक्षेप करने से इनकार भी कर देती है।
(v) न्यायिक प्रक्रिया बहुत धीमी और बोझिल होने के साथ-साथ महँगी है।
(vi) न्यायाधीश विधि विशेषज्ञ होते हैं; अत: वे प्रशासनिक खर्चो की अत्यंत तकनीकी प्रकृति को समुचित तौर पर समझ नहीं पाते।
(vii) राज्य के कल्याणकारी रुझान के चलते प्रशासन का आकार, उसकी विविधता तथा जटिलता बढ़ गई है।
● **निष्कर्ष:-** निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि बेशक प्रशासन विधायी और न्यायिक नियंत्रण की अपनी कुछ सीमाएं हैं लेकिन अगर ये सीमाएँ भी प्रशासन पर न हों तो प्रशासन निरंकुश हो जाएगा और वह अपने लोक सेवा के उद्देश्य से भ्रमित हो जाता है जिसका खामियाजा आम जनता को भुगतना होता है। इस नियंत्रण के अभाव में प्रशासनिक निरंकुशता को बढ़ावा दिया जाता है। अतः प्रशासन पर नियंत्रण अत्यावश्यक

है। न्यायालय प्रशासन के उस प्रत्येक कार्य की समीक्षा नहीं कर सकते, जो नागरिकों को प्रभावित करता है।

✍️डॉ. कुमार राकेश रंजन
सहायक प्राध्यापक
राजनीति विज्ञान
एल.एन. डी. कॉलेज, मोतिहारी
पूर्वी चंपारण (बिहार)